9.2



मौलाना

अबुलकलाम आज़ाद

सुरेश सलिल



मौलाना
अबुल कलाम आज़ाद

सुरेश सलिल



शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य : चार रुपये (4.00)

संस्करण : 1985

शिक्षा भारती, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 द्वारा प्रकाशित
MAULANA ABUL KALAM AZAD (Biography)
by Suresh Salil

1

परिवार एवं जन्म

भारत के राष्ट्रीय आकाश को आलोकित करनेवाले सितारों में मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का नाम पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ लिया जाता है। दोनों ही समान प्रतिभाओं के धनी थे। कलम का जादू, बोलने में महारत, सुंदर तराशा हुआ शारीरिक गठन, भरा-पूरा जीवन, राजनीतिक दक्षता, प्रशासन में निपुणता, इतिहास-कला-साहित्य-धर्म और दर्शन का अधिकार-पूर्ण ज्ञान और जन-प्रियता—सभी क्षेत्रों में दोनों एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर थे। किन्तु एक बात का दोनों में कोई साम्य न था। पं० जवाहरलाल नेहरू इसी देश की माटी की उपज थे। इसी देश से उनके जीवन के सभी सम्बन्ध-सूत्र जुड़े थे। परंतु मौलाना आज़ाद का जन्म अरब के मक्का नामक धार्मिक स्थान में हुआ था और वंश परम्परा से वह ईरानी थे। इस दृष्टि से मौलाना आज़ाद का महत्व पंडित नेहरू से कहीं ज्यादा बढ़-चढ़कर है। दूसरे देश की वंश-परम्परा में, और दूसरे ही देश में जन्मा व्यक्ति यदि भारत को आत्मा से एकाकार कर सका, तो यह कम महत्व को

बात नहीं है।

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के परिवार और जन्म का सही-सही परिचय प्राप्त करने के लिए भारत के पिछले एक हज़ार वर्षों के इतिहास पर नज़र डालना ज़रूरी है। इस काल के इतिहास को समझे बिना मौलाना आज़ाद को नहीं समझा जा सकता।

भारत के इतिहास में मुगल साम्राज्य की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बाबर उसका सूत्रधार था।

बाबर के ही जमाने में मौलाना आज़ाद के पूर्वज ईरान से भारत आए थे। पहले ये लोग आगरे में बसे, किन्तु बाद में दिल्ली आ गए। विद्वता और धार्मिकता के लिए मौलाना आज़ाद का परिवार शुरू से ही बहुत प्रसिद्ध रहा, किन्तु अकबर के ज़माने में इस परिवार के मौलाना जमालुद्दीन बहुत मशहूर हुए। वह संत स्वभाव के व्यक्ति थे ओर उनके शिष्यों की संख्या हज़ारों में थी। अकबर की तीसरी पीढ़ी में, मुगल सल्तनत की गद्दी पर जब शाहजहां आसीन हुआ, तो इसी परिवार के एक व्यक्ति मौलाना हादी को आगरा किले का किलेदार नियुक्त किया गया। शिक्षा के क्षेत्र में भी मौलाना आज़ाद का परिवार हरदम आगे रहा। इनके एक पूर्वज को मुगल-शासन के अन्तर्गत शिक्षा-निदेशक के पद पर नियुक्त किया गया था। कहा जाता

है कि मुगल-शासन-व्यवस्था के वह अंतिम शिक्षा-निदेशक थे।

मौलाना आज़ाद इसी गौरवशाली वंश-परंपरा की उपज थे। उनके पिता का नाम था—मौलाना खैरूद्दीन। मौलाना खैरूद्दीन अरबी भाषा के अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान थे। अरबी भाषा में दस खण्डों में उन्होंने एक विशाल ग्रन्थ की रचना की थी, जिसका प्रकाशन मिस्र में हुआ था। वह इस्लाम धर्म के एक प्रसिद्ध संत भी थे और दूर-दूर के मुस्लिम देशों की यात्रा कर चुके थे। मौलाना खैरूद्दीन के पिता की मृत्यु जिस समय हुई, उस समय उनकी उम्र बहुत ही कम थी। इसलिए उनका पालन-पोषण उनके नाना की देखरेख में हुआ। किन्तु सन् १८५७ में उन्हें भारत छोड़ने का इरादा बनाना पड़ा। उस समय, भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम के फलस्वरूप, भारत की जनता पर अंग्रेज़ों का दमन चक्र बहुत तेज हो गया था। साधारण जनता को सांस लेना तक दुभर हो उठा था। ऐसी परिस्थितियों में मौलाना खैरूद्दीन ने भारत छोड़ने में ही अपनी भलाई समझी और वह मक्का के धार्मिक वातावरण में जा बसे। वहीं एक अरबी विद्वान की पुत्री से उनका विवाह भी हो गया।

मक्का मे सन् १८८८ में अबुल कलाम आज़ाद का

जन्म हुआ। उनके जन्म के दो साल बाद ही उनके माता-पिता सपरिवार हिन्दुस्तान चले आए। अब्दुल कलाम अपने पांच भाई-बहनों में सबसे छोटे थे। दो भाई और तीन बहनें। बड़े भाई का नाम गुलाम यासीन अबुनस्र था और बहनों के नाम थे—जेनब, फातिमा और हनीफा। पांचों भाई-बहनों में साहित्य और कला के प्रति विशेष लगाव था। बड़े भाई गुलाम यासीन अच्छे शायर भी थे और 'आह' के तखल्लुस से शायरी करते थे। आज़ाद की दो बहनें—फातिमा और हनीफा भी शायरी करती थीं। फातिमा का तखल्लुस था—आरज़ू बेगम, और हनीफा का तखल्लुस था—आबरू बेगम। आरज़ू बेगम गद्य भी बहुत खूबसूरत लिखती थीं और उनकी लिखावट भीं बड़ी ख़ुशक़त थी।

2

प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा

अबुल कलाम का प्रारम्भिक जीवन दूसरे बच्चों से बिल्कुल अलग हटकर था। दूसरे बच्चों की तरह न तो वह स्वभाव से बहुत चपल-चंचल और वाचाल थे, न हर समय खेल-कूद की धुन में ही रहते थे। एक संभ्रांत, विद्याव्यसनी और धार्मिक परिवार में पैदा होने के कारण उनकी रुचियां भी वैसी ही थीं। ऐसा नहीं था कि वह खेलकूद से बिल्कुल दूर-दूर ही रहते हों। खेलते-कूदते ज़रूर थे, किन्तु उनके खेल दूसरे बच्चों के खेलों से अलग किस्म के होते थे। अगर आज़ाद के बचपन के खेलों और रुचियों को गौर से देखा जाए तो उनके भावी जीवन की महत्वाकांक्षाओं का अंदाज़ आसानी से लगाया जा सकता है। घर की बेजान और निर्जीव वस्तुओं को श्रोता और दर्शक मानकर वह लम्बे-लम्बे व्याख्यान दे डालते थे, उनसे अपना स्वागत करवा लेते थे और मन ही मन तालियों की गड़गड़ाहट भी सुन लेते थे। बड़ी बहनें अपने छोटे भाई के ये अजीबो-गरीब और भोले-भाले करतब देखती तो खूब हंसतीं। लेकिन नन्हें आज़ाद इससे तनिक भी शरमाते न थे।

वह कहते, "इसमें हंसने की भला क्या बात है ? मुझे ऐसे ही खेल पसन्द हैं ।"

एक बार की बात है, उस समय आज़ाद की उम्र ७-८ वर्ष की रही होगी । वह घर के छोटे-बड़े कई संदूकों को एक कतार में रखकर उन पर बैठ गए । इसके बाद अपनी बड़ी बहनों से बोले, "तुम लोग खूब ज़ोर-ज़ोर से कहो कि हटो, रास्ता दो । दिल्ली के मौलाना तशरीफ ला रहे हैं ।" बहनें बोलीं, "लेकिन यहां तो कोई भी नहीं है । फिर भला हमारी बात को कौन सुनेगा ? कौन रास्ता देगा !" आज़ाद बिना झेंपे, गम्भीर आवाज़ में बोले, "थोड़ी देर के लिए यह मान लो कि मैं संदूकों की इस रेल पर चढ़कर आया हूं, और मुझे लेने स्टेशन पर बहुत सारी भीड़ आई है ।" बहनों ने जब ज़ोर-ज़ोर से रास्ता देने की बात कही तो आजाद, बड़प्पन में डूबे हुए आदमी की तरह, संदूकों पर से उठकर खड़े हुए और नीचे उतर आए ।

आज़ाद के बचपन के इन खेलों का अगर बारीकी से अध्ययन किया जाए तो उनकी भावी जोवन की कल्पना का अंदाज़ आसानी से लगाया जा सकता है । इन खेलों से यह पता चलता है कि वह बड़े होकर एक ऐसा आदमी बनना चाहते थे, जो दूसरों से ज़्यादा काबिल हो जो दूसरों के आगे अपने बड़प्पन की

मिसाल कायम कर सकें। हरदम वह अपने बचपन में यही सपना देखा करते थे कि जब वह बड़े हो जाएंगे तो लोग उन्हें इज्ज़त की नजर से देखेंगे और उनके बताए रास्ते पर चलेंगे। उनके नाम 'आज़ाद' की एक अपनी कहानी है। आज़ादी की भावना बचपन से ही उनको अपनी ओर खींचने लगी थी। आज़ाद रहना और आज़ादी में सांस लेना उन्होंने बचपन में ही सीख लिया था। आज़ाद के पिता मौलाना खैरुद्दीन ने अपने दोनों बेटों के नाम कुछ इस तरह से रखे थे कि दोनों के ही नामों में 'गुलाम' शब्द आता था। बड़े बेटे का नाम था—गुलाम यासीन अबूनस्र और सबसे छोटे, यानी अबुलकलाम का पूरा नाम था—गुलाम मोहिउद्दीन हैदर। 'गुलाम' शब्द के पीछे उनकी मंशा पूरी तरह आध्यात्मिक थी। चूंकि वह एक मशहूर पीर भी थे, इसलिए उनका नजरिया यह था कि हर आदमी खुदावन्द करीम (ईश्वर) का गुलाम है। लेकिन अबुल कलाम को पिता द्वारा रखा गया यह नाम कतई नापसंद था। किसी भी तौर पर 'गुलाम' शब्द को वह बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे। इसलिए अपने नाम को बदलकर वह गुलाम मोहिउद्दीन हैदर से अबुल कलाम आज़ाद हो गए और खुद का दिया हुआ यह नाम आगे चलकर ऐसा चला, कि असली नाम पूरी तरह गुमनामी में खो

गया। और, जैसा कि हम आगे के उनकी जिंदगी के हालात से जानेंग, बड़े आदमी बनने और आज़ाद रहने का उनका बचपन का सपना अगली जिंदगी में पूरी तरह सच निकला।

अब सुनिए, आज़ाद की पढ़ाई के हालचाल। पढ़ाई से पहले की ज़िंदगी के रंगढंग से यह अंदाज तो लग ही गया होगा कि वे अपनी उम्र के दूसरे बच्चों जैसे नहीं थे। इसलिए यह अंदाज़ भी लगा लेना चाहिए कि उनकी पढ़ाई आम ढर्रे से अलग हटकर हुई होगी। हां, सच, ऐसी ही बात थी। आज़ाद की पढ़ाई दूसरे आम बच्चों की तरह किसी स्कूल या मक्तब से नहीं शुरू हुई। सबसे पहले उनके पिता मौलाना खैरूद्दीन ने उन्हें घर पर खुद पढ़ाना शुरू किया। उनका खयाल था कि स्कूल या मक्तबों में बंधे-बंधाए और घिसे-पिटे ढर्रे पर ही बच्चों को पढ़ाया जाता है। इसलिए कुछ दिनों तक तो वह अपने बेटे को खुद पढ़ाते रहे, बाद में घर पर ही पढ़ाने के लिए अध्यापकों का इंतजाम कर दिया। आज़ाद को घर पर पढ़ाने के लिए हर विषय के अलग-अलग अध्यापक आते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज़ाद को स्कूल या मक्तब का मुंह देखने का मौका कभी नहीं मिला। लेकिन उनका दिमाग बहुत तेज़ था। एक बार जो कुछ वह पढ़ लेते, उनके दिमाग में हरदम

के लिए चस्पां हो जाता। जो पाठ एक बार अध्यापक उन्हें पढ़ा देते, अगले दिन बिना किताब देखे हूबहू सुना देते। इसी खूबी का नतीजा था कि १६ वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते साहित्य, दर्शन, और गणित का पूरा कोर्स, और वह भी अरबी-फारसी भाषा में, आज़ाद ने पूरा कर डाला। आम-तौर पर उतनी पढ़ाई लोग २०-२५ साल की उम्र तक पूरी कर पाते हैं।

उन्होंने अपना विद्यार्थी-जीवन तो १६ वर्ष की उम्र में समाप्त किया, लेकिन अपनी विद्वता का परिचय वह १४ वर्ष की उम्र से ही देने लगे थे। सिर्फ १४ साल की उम्र में वह एक साहित्यिक पत्रिका का सम्पादन करने लगे। पत्रिका का नाम था 'लिसानुस्सिद्क'। यह पत्रिका उन्होंने सन् १९०२ में निकाली थी। पत्रिका में वह उस समय की जानी-मानी अदबी हस्तियों (साहित्यकारों) की रचनाओं पर आलोचनात्मक लेख लिखते थे। और लेख भी ऐसे कि लोग पढ़कर दंग रह जाते। यह आज़ाद की कलम का ही कमाल था कि जिन लोगों ने उन्हें देखा नहीं था, वह उन्हें पकी उम्र का पाएदार आलोचक और विचारक समझते थे। लेकिन जब उन्हें यह पता चलता कि अबुल कलाम आज़ाद नाम के शख्स की उम्र सिर्फ १४ साल है तो दांतों तले उंगली दबाए बिना न रहते।

अपने विद्यार्थी-जीवन में आज़ाद नियम और धर्म कर्म के भी पूरे पाबंद थे। दिन में पांच बार नियम-पूर्वक नमाज़ पढ़ते थे और एक-एक मिनट समय का पूरी तरह सदुपयोग करते थे। नमाज़ और खाने-पीने के अलावा उनका सारा समय पढ़ने में ही खर्च होता था। तब भी पढ़ने से तबियत न ऊबती। अध्यापक लोग पढ़ाकर चले जाते, तब भी किताबों में ही डूबे रहते। रात में भी देर तक पढ़ते रहते थे और सुबह जल्दी उठने की कोशिश करते थे। लेकिन बचपन में सभी को कुछ ज्यादा ही नींद सताती है। दूसरे, रात में देर तक जगने के कारण तड़के जाग पाना और भी मुश्किल होता। इसलिए बहनों से आरजू-मिन्नत करते कि 'सुबह जगा जरूर देना। एक हो आवाज़ उठ जाऊंगा।' सुबह बहनें जैसे ही पहली हांक देतीं, आज़ाद झटपट उठकर बैठ जाते। खुद ही चिराग जलाते और अपना पाठ याद करने लगते। लेकिन जिस दिन बहनें उन्हें न जगातीं, या खुद आज़ाद की ही आंख न खुल पाती, उस दिन पूरे दिन वह अपने आप को कोसते रहते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अबुल कलाम का विद्यार्थी-जीवन प्राचीन भारतीय परम्परा के उन विद्यार्थियों जैसा था, जिनके तीन गुणों का उल्लेख आज भी

किया जाता है। वे तीन गुण इस प्रकार हैं—काक चेष्टा; अर्थात कौए जैसी तेज़ नज़र, वको ध्यानम्, अर्थात बगुले जैसी ध्यान-मग्नता, और श्वान निद्रा, अर्थात जिस प्रकार हल्की-सी आहट से कुत्ता जागकर चौकन्ना हो जाता है उसी तरह जल्दी जाग पड़ना।

अपने विद्यार्थी-जीवन में ही आज़ाद को शिक्षक की भूमिका भी निभानी पड़ी। उस समय का यह नियम था कि अपनी पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद विद्यार्थी को कुछ लोगों को पढ़ाना भी होता था। ऐसा इसलिए किया जाता था, ताकि उसकी योग्यता का पता चल जाए। इसे एक तरह का इम्तिहान भी कहा जा सकता है। इस इम्तिहान में भी मौलाना आज़ाद पूरी तरह खरे उतरे। उन्हें कुछ ऐसे विद्यार्थियों को पढ़ाना पड़ा, जो उम्र में उनसे बड़े थे।

3

लेखन एवं पत्रकारिता

इस बात का जिक्र पीछे किया जा चुका है, कि अबुल कलाम १४ साल की उम्र से ही अपनी काबलियत का कमाल दिखाने लगे थे। अपनी ज़िंदगी का सबसे पहला रिसाला उन्होंने इसी उम्र में सम्पादित किया था। उस पत्रिका के सम्पादन-काल में आज़ाद के साथ कुछ बड़ी ही मजेदार और अजीबो-गरीब घटनाएं घटीं। उनसे इस बात का अंदाज लगाया जा सकता है कि वह काबलियत और पढ़ाई-लिखाई के मामले में अपनी असली उम्र से कितने बड़े थे।

जिन दिनों आज़ाद 'लिसानुस्सिद्क' का सम्पादन करते थे, उर्दू के क्षेत्र में मौलाना अल्ताफ हुसेन हाली बहुत बड़े लेखक और आलोचक माने जाते थे। उन्होंने भारतीय मुस्लिम समाज के संरक्षक सर सैयद अहमद खां की एक बड़ी जीवनी लिखी और प्रकाशित कराई थी। जब वह जीवनी मौलाना आज़ाद की नज़रों के सामने से गुज़री, तो वह अनदेखा न कर पाए। उन्होंने उसकी खूबियों और खामियों का पूरा-पूरा ब्योरा देते हुए एक बड़ा सा आलोचनात्मक लेख लिखा और अपनी

पत्रिका में ही प्रकाशित किया। जैसे ही वह लेख छपकर प्रतिष्ठित लेखकों के सामने आया, एक तूफान-सा बरपा हो गया। बात यह थी कि उस ज़माने में 'हाली' का इतना रौब और दबदबा था कि बड़े से बड़े लेखक-आलोचक की उनकी खामियों पर नुक्ता लगाने की हिम्मत न पड़ती थी। सच पूछा जाए तो, उस ज़माने के लिहाज से, आजाद ने वह लेख लिखकर उर्दू अदब में नौवां अजूबा (नवां आश्चर्य) खड़ा कर दिया था। और इसका नतीजा यह निकला कि लोगों के दिमाग में यह बात बैठ गई कि अबुल कलाम आज़ाद नाम का शख्स अगर 'हाली' से बड़ा नहीं तो कम से कम हमउम्र ज़रूर होगा।

उन्हीं दिनों लाहौर की प्रसिद्ध साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था 'अंजुमन-हिमायते-इस्लाम' का सालाना जलसा होने वाला था। उसमें शामिल होने का निमंत्रण आज़ाद को भी मिला। यह पहला मौका था, जब किसी बड़ी सभा में भाषण देने के लिए उन्हें बुलाया गया था। अतः उन्होंने हामी भर दी और ऐन मौके पर शरीक होने के लिए चल पड़े। उस मौके पर उर्दू अदब की सभी जानी-मानी हस्तियां मौजूद थीं। मसलन हाली, इकबाल, शिबली जैसे पाएदार लोग। मौलाना हाली को बस इतनी-सी खबर थी कि उस सभा में,

'लिसानुस्सिद्क' का वह तेज़-तर्रार सम्पादक भी अपनी तकरीर पेश करेगा, जिसने उनकी किताब की बखिया उधेड़ने में कोई कसर उठा न रखी थी। इसलिए वह बहुत संभले हुए से बैठे थे और इस ताक में भी थे कि अगर मौका मिला तो चारों खाने चित्त किए बिना न मानूंगा। हाली का अंदाज़ था कि 'लिसानुस्सिद्क' का वह तेज़-तर्रार सम्पादक ज़रूर उनका हमउम्र होगा या उनसे बड़ा होगा। लेकिन जब 'लिसानुस्सिद्क' के सम्पादक अबुल कलाम आज़ाद का नाम बोलने के लिए पुकारा गया तो १४-१५ साल का एक छोकरा बोलने के लिए खड़ा हुआ। उसके खड़े होते ही चारों ओर से आवाजें आने लगीं—'अमां, हम 'लिसानुस्सिद्क' के मदीर (सम्पादक) अबुल कलाम आज़ाद की तकरीर सुनने आए हैं। वक्त ज़ाया करने के बजाय उन्हीं को बुलाइए।' और जब लोगों को यह बताया गया कि ये बरखुदार ही एडीटर अबुल कलाम आज़ाद हैं तो लोगों की आंखें अचम्भे के कारण फटी रह गईं। हाली साहब की हालत तो देखते ही बनती थी। मानो आसमान से गिर पड़े हों बेचारे। और जब अबुल कलाम आज़ाद नें अपनी टकसाली ज़बान में दर्शन के सिद्धांतों की व्याख्या करनी शुरू की, तो स्टेज पर मौजूद सारे विद्वान दंग रह गए।

बिल्कुल इसी तरह की घटना उस समय भी घटी, जब शिबली साहब उनसे मिलने के लिए उनके घर गए। बैठकखाने में जब आज़ाद शिबली साहब की खातिर-तवज्जो कर रहे थे और साथ-साथ बातें भी, तो शिबली साहब को लगा कि यह आज़ाद का बेटा होगा। इसलिए बोले, "बेटे, जरा अपने वालिद साहब (पिताजी) को बुलाओ। मैं तुम्हारे वालिद अबुल कलाम आजाद से मिलना चाहता हूं।" शिबली साहब की यह बात सुनकर आज़ाद समझ गए कि इन्हें धोखा हुआ है। अतः बड़े अदब के साथ कहा, "हुजूरे आला, इस नाचीज़ का नाम ही अबुल कलाम आज़ाद है।" यह सुनकर शिबली साहब ने उन्हें तपाक से अपने गले लगा लिया और गद्गद होकर बोले, "गुस्ताखी के लिए माफ करना बेटे! लेकिन सच मानो, तुम्हारी कलम की उम्र तुम्हारी अपनी उम्र से कई गुना आगे है।"

यह हाल उन दिनों था, ज़ब आजाद की उम्र कुल १४-१५ साल की थी। इसके बाद तो उन्होंने सफलता की न जाने कितनी मंजिलें तय कीं और शोहरत की बुलंदियों को छुआ। राजनीति के क्षेत्र में उन्होंने जो कुछ किया और जो कुछ पाया, वह भी उनकी कलम का ही कमाल था।

आज़ाद ने अपना लेखक-जीवन और पत्रकार-जीवन

करीब-करीब एक साथ चलाया। चौदह साल की उम्र में उन्होंने 'लिसानुस्सिद्क' जैसी गम्भीर और स्तरीय पत्रिका निकाली। उससे पहले भी उनके फुटकर लेख लाहौर के 'पैसा'; अमृतसर के 'वकील' और लखनऊ के 'अन नदवः' जैसे मशहूर साहित्यिक पत्रों में छपकर शोहरत हासिल कर चुके थे।

'लिसानुस्सिद्क' का प्रकाशन और सम्पादन आज़ाद ने लगभग दो साल तक किया। उसके बाद शिबली साहब के विशेष आग्रह पर वह 'अन-नदवः' के सम्पादन हेतु लखनऊ चले गए। लेकिन लगता है, वहां आज़ाद का मन नहीं लगा। छः मास तक 'अन-नदवः' का सम्पादन करने के बाद वह बम्बई चले गए और कुछ दिनों तक स्वतंत्र रूप से लेखन करते रहे। सन् १९०६ में अमृतसर की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'वकील' के व्यवस्थापकों ने उनसे वकील' के सम्पादन का दायित्व संभालने का आग्रह किया। आज़ाद राजी हो गए और अमृतसर रहकर 'वकील' का सम्पादन करने लगे। लेकिन कुछ दिनों बाद 'वकील' का प्रकाशन कुछ कारणों से स्थगित हो गया। उन्हीं दिनों कलकत्ते से 'दारुल सल्तनत' नाम की एक उच्चकोटि की साहित्यिक पत्रिका निकलती थी। उसका सम्पादन एक संपादक नहीं, बल्कि कई सम्पादकों का एक मंडल करता था। 'वकील' के

बंद होने के बाद 'दारुल सल्तनत' के संपादक मंडल में शामिल होने का निमंत्रण आज़ाद को मिला। उन्होंने उसे मंजूर कर लिया और अमृतसर से कलकत्ता आ गए।

'यारुल सल्तनत' में कुछ दिनों तक काम करने के बाद आज़ाद को लगा कि मंडल के सभी संपादकों के बीच एक प्रतिस्पर्धा की भावना काम कर रही है, जबकि जरूरत सहयोग की थी। यह स्थिति उन्हें अच्छी न लगी। आगे चलकर तो यह बर्दाश्त से बाहर हो उठी, ऐसी हालत में उन्होंने 'दारुल सल्तनत' के सम्पादक मण्डल से इस्तीफा दे दिया और कलकत्ता छोड़ दिया।

'दारुल सल्तनत' की सम्पादकी और कलकत्ता छोड़ने के कुछ ही दिनों बाद आजाद को विदेश-भ्रमण का एक मौका मिल गया। उसे उन्होंने हाथ से न जाने दिया और ईराक, मिस्र, सीरिया, तुर्की व फ्रांस आदि देशों का भ्रमण किया। लेकिन उनका भ्रमण मात्र मनबहलाव का साधन न था, बल्कि हर देश की सामाजिक-राजनीतिक व सांस्कृतिक दशा का बारीकी से अध्ययन भी करते जाते थे। ईराक, मिस्र, सीरिया व तुर्की के भ्रमण के दौरान उन देशों के मुस्लिम समाज की जो हालत उन्होंने देखी, वह हिन्दुस्तान के मुसलमानों की हालत से कई गुना बेहतर थी। वैसे तो

हिन्दुस्तान के मुस्लिम समाज की सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने, उन्हें शिक्षित और योग्य बनाने की दशा में सर सैयद अहमद खां ने काफी काम किया था और अलीगढ़ में मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना भी हो चुकी थी लेकिन आज़ाद को भारत के मुस्लिम समाज में जो सबसे बड़ी कमी खटकती थी, वह थी देश प्रेम की भावना की कमी। दूसरे भारतीय समुदायों की तरह भारत का मुस्लिम समुदाय भारत की आज़ादी की लड़ाई को अपनी लड़ाई नहीं बना पा रहा था। इसका एक कारण था। कारण यह था कि सर सैयद अहमद खां ने एक ओर जहां मुस्लिम समाज के फायदे के बहुत सारे काम किए थे, वहीं दूसरी ओर अंग्रेज़ों की स्वामि-भक्ति की भावना भी उनमें भर दी थी। मुस्लिम समाज के फायदे के जो-जो काम सर सैयद अहमद खां कर रहे थे, उनमें ब्रिटिश सरकार सिर्फ इसलिए मदद करती थी, ताकि मुसलमान अंग्रेज़-परस्त बने रहें और भारतीयों की आज़ादी की लड़ाई ज़ोर न पकड़ने पाए। भारत के अधिकांश मुसलमान इस बात को समझ नहीं पा रहे थे। लेकिन आज़ाद अंग्रेज़ों की इस चाल को बड़े गौर से देख रहे थे और उनके मन में रह-रहकर एक तूफान-सा सिर उठाने को मचल रहा था। वह चाहते थे कि क्या हिंदू और क्या मुसलमान, सभी देश

की राष्ट्रीय लड़ाई में कंधे से कंधा मिलाकर चलें और अंग्रेज़ सरकार की सारी चालों को नाकाम कर दें।

और इस प्रकार आज़ाद ने तय कर लिया कि मुसलमानों में राष्ट्रीय भावना भरने, उनके मन में देश को लेकर नई उमंगें पैदा करने के काम को सबसे पहले करना होगा। लेकिन इस काम के लिए तरीका उन्होंने वही अपनाया, जिसे पहले भी आजमा चुके थे। उन्होंने मुस्लिम समाज में नवजागृति लाने के उद्देश्य से एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया, जिसका नाम था— 'अल हिलाल'। 'अल हिलाल' का निकलना था कि उर्दू पत्रकारिता में युगान्तर-सा आ गया। उसकी राष्ट्रीय विचारधारा, साहित्यिक बुलन्दी तो अपनी जगह पर थी ही, लेकिन सजावट, छपाई-सफाई और शान-शौकत में भी 'अल हिलाल' ने तब तक की सारी उर्दू पत्र-पत्रिकाओं को कई कदम पीछे छोड़ दिया था। दिन पर दिन मांग बढ़ती गई और तीन महीने बीतते न बीतते 'अल हिलाल' के तब तक के सारे अंकों को दुबारा छापना पड़ा। उस समय तक यह हालत थी कि हिन्दी या उर्दू की बहुत कम पत्रिकाएं ऐसी थीं, जो १० या १५ हजार छपती हों, लेकिन 'अल हिलाल' दो ही साल में २६ हजार छपने लगा। महीने के अन्त में रिकार्ड की प्रतियां भी मुश्किल से ही बच पातीं।

'अल हिलाल' की दिन-ब-दिन की बढ़ती लोकप्रियता अंग्रेज़ बहादुर की आंखों में खटकने लगी। वैसे तो उन्हें इसकी कोई फिक्र न होती, बल्कि अगर आज़ाद चाहते तो अंग्रेज़ बहादुर उन्हें और उनकी पत्रिका को सिर-आंखों पर बिठा सकते थे। लेकिन चूंकि 'अल हिलाल' क्रांति और राष्ट्रीय आन्दोलन का उद्घोषक बनकर सामने आया था और शाहरत की बुलन्दियों पर पहुंचता जा रहा था, इसलिए अंग्रेज़ सरकार का आज़ाद और उनके 'अल हिलाल' पर खफा होना लाजिमी था। पहली बार दो हज़ार की और दोबारा दस हज़ार की जमानतें 'अल हिलाल' से मांगी गईं। लेकिन आज़ाद की कलम और 'अल हिलाल' के कॉलम तब भी मुलायम न पड़े, बल्कि और-और सख्त होते गए। इस सबके फ़लस्वरूप दोनों बार जमानतें ज़ब्त कर ली गईं। आखिर में तो हालात यहां तक पहुंच गए कि आज़ाद को 'अल हिलाल' बन्द करने का फैसला लेना पड़ा।

'अल हिलाल' बन्द करने के कुछ ही अर्से बाद आज़ाद ने 'अल बलाग़' नाम से एक और पत्रिका निकाली। यह पत्रिका सन् १९१५ में शुरू हुई। इसका भी आलम 'अल हिलाल' जैसा ही था। वही तेज़-तर्रार भाषा-शैली और दहकते अंगारों जैसे राष्ट्रीय विचार। अब ब्रिटिश सरकार को यह लगा कि इस फौलादी

शख्स से प्रेस एक्ट के हथियार से लड़ पाना संभव नहीं है। अतः अंत में भारत सुरक्षा अधिनियम (डी. आई. आर.) की आड़ लेकर सन् १९१६ में आज़ाद के सामने यह हालात पैदा कर दिए गए कि उन्हें कलकत्ता छोड़ने को मजबूर होना पड़ा। दूसरी जिन जगहों पर वह जाना चाहते थे (अर्थात युनाइटेड प्रॉविन्स आसरा व अवध तथा बम्बई) वहां जाने पर भी रोक थी। अतः अंत में मजबूर होकर आज़ाद बंगाल से बिहार चले गए और रांची में बस गए। रांची में भी वह आज़ादी के साथ मुश्किल से ५-६ महीने ही रह पाए। इसी बीच उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और तीन साल के लिए जेल भेज दिया गया। हालांकि 'अल बलाग़' के बाद भी आज़ाद ने 'पेगाम' नाम से एक राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र निकाला, लेकिन इस पत्र के कुछ अंश ही निकल सके।

जितना गौरवपूर्ण आज़ाद का पत्रकार-जीवन रहा, एक लेखक के रूप में भी उससे कम गौरव उन्होंने नहीं पाया। धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति और साहित्य; लगभग सभी विषयों पर उन्होंने अपनी कलम पूरे अधिकार के साथ चलाई। उनकी कुछ महत्वपूर्ण रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

'तर्जुमानुल क़ुरान', 'तज़्किर', 'गुबारे खातिर' और 'इण्डिया विन्स फ्रीडम'।

इन पुस्तकों में पहली, अर्थात 'तर्जुमानुल क़ुरान' में मौलाना ने 'क़ुरान शरीफ़' की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। सच पूछा जाए तो यह ग्रन्थ इस्लामी संस्कृति का आईना हैं। 'तज्किरा' मौलाना की आत्मकथा है, जिसमें उन्होंने अपनी विशिष्ट भाषा और शैली के द्वारा अपने जीवन के संघर्षों को, अपने अनुभवों को और अपने युग को प्रस्तुत किया है। 'गुबारे खातिर' में मौलाना आज़ाद ने अपने उन पत्रों को संकलित किया है, जो उन्होंने अहमद नगर किले से नज़रबन्दी के दौरान नवाब सदरयार जंग को लिखे थे। इन पत्रों में मौलाना ने आम ज़िंदगी और दुनियादारी की बातें नहीं पेश की हैं, बल्कि समाजशास्त्र इतिहास और मनोविज्ञान की अनेकानेक गुत्थियों को अपने नज़रिये से सुलझाया है और अपना जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त पुस्तकें मौलाना आज़ाद ने अरबी-फारसी मिश्रित उर्दू भाषा में लिखी है। इनका महत्व शैली की दृष्टि से भी बहुत है। मौलाना के ज़माने तक उर्दू साहित्य में दो अलग-अलग शैलियां प्रचलित थीं। एक शैली थी—विशुद्ध साहित्यिक और आलंकारिक भाषा से युक्त; और दूसरी शैली रोज़मर्रा की बोलचाल की भाषा की। पहली शैली के पक्षधर थे वे लोग जो साहित्य-सृजन को विशुद्ध साहित्य के नज़रिये से देखते

थे और साहित्य को चक विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित रहने देना चाहते थे। और दूसरी तरह की शैली को उन लोगों ने अपनाया और पाला पोसा था, जो किसी न किसी स्तर तक अपना जुड़ाव आम जनता के साथ महसूस करते थे। लेकिन मौलाना आज़ाद ने अपने साहित्य-सृजन के द्वारा तीसरे प्रकार की एक ऐसी शैली ईज़ाद की जो उपर्युक्त दोनों प्रकार की शैलियों के मिश्रण से बनी। उनकी इस विशिष्ट शैली को दोनों ही खेमों से काफी समर्थन मिला और आम जनता ने भी उसे काफी पसंद किया। मौलाना आज़ाद का महत्व उर्दू साहित्य में जहां एक अच्छे गद्यकार और शैलीकार के रूप में है, वहीं एक बहुभाषाविद् के रूप में भी उनकी ख्याति है। अरबी, फारसी, तुर्की, फ्रेंच, इंगलिश और उर्दू—इतनी भाषाओं पर उनका अधिकार था। इन्हें वह अच्छी तरह बोल-पढ़ और लिख लेते थे। जहां उनका स्थान एक विशिष्ट राजनैतिक नेता के रूप में है, वहीं भारत के एक महान साहित्यकार व पत्रकार के रूप में भी वह अमर हैं।

4

हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक

मौलाना आज़ाद की ज़िंदगी के दो उद्देश्य थे— राष्ट्रीय स्वाधीनता और हिन्दू-मुस्लिम एकता। किन्तु इन दोनों उद्देश्यों को अगर दो अलग-अलग बिन्दुओं पर रखकर देखना चाहें तो ऐसा लगेगा, मानों दोनों बिन्दु आपस में मिलना चाहते हैं। जिस समय मौलाना आज़ाद के दिमाग में राष्ट्रीय स्वाधीनता की बात आई, ठीक उसी समय उनके मन में यह इच्छा उठी कि इस उद्देश्य की पूर्ति में हिन्दु और मुसलमान साथ-साथ मिलकर सहयोग करें। पीछे इस बात का जिक्र आ चुका है कि 'अल हिलाल' के प्रकाशन के पीछे उनकी यही दोनों मूल भावनाएं काम कर रही थीं। 'अल हिलाल' और 'अल बलाग' के द्वारा मौलाना आज़ाद ने राष्ट्रीय स्वाधीनता और हिन्दु-मुस्लिम एकता की दिशा में जो प्रयत्न किए उन्हीं के पुरस्कार स्वरूप उन्हें तीन साल रांची जेल में रहना पड़ा। जेल से छूटने के बाद भी मौलाना आज़ाद ने अपने उन प्रयत्नों में किसी तरह की कोई ढील न आने दी, बल्कि और भी ज़ोर-शोर के साथ जुट गए। जैसे कि पहले उनका

मुख्य कार्यक्षेत्र केवल पत्रकारिता थी, अब वैसा न रहा, बल्कि अब वे सक्रिय राजनीति को भी अपना काफी समय देने लगे। लेकिन पत्रकारिता के हथियार को उन्होंने छोड़ा नहीं। २३ सितंबर, १९२१ से उन्होंने 'पैगाम' नाम का एक साप्ताहिक पत्र शुरू किया। इस पत्र का नज़रिया, जोश-खरोश आदि भी बिल्कुल वैसे ही थे, जैसे 'अल हिलाल' और 'अल बलाग़ के रह चुके थे। लेकिन चूंकि अब मौलाना का ज़्यादातर समय सक्रिय राजनीतिक कामों में लगने लगा था, इसलिए 'पैगाम' के लिए जितने समय की ज़रूरत थी, उतना समय निकाल पाना संभव न दिखा। दूसरा इस प्रकार का कोई सहयोगी था नहीं, जिसे 'पैगाम' की ज़िम्मेदारी दी जा सकती। इसलिए 'पैगाम' का प्रकाशन कुल दो महीने तक ही हो सका। 'पैगाम' का आखिरी अंक १६ दिसंबर १९२१ को निकला था।

जिस समय मौलाना आज़ाद सक्रिय राजनीति के क्षेत्र में उतरे। अंग्रेज़ सरकार ने तुर्की के खिलाफत आंदोलन का विरोध करके भारतीय मुसलमानों का विरोध भी बैठे-बिठाए मोल ले लिया था। यही नहीं, मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं का भी अंग्रेज़ों ने अनादर किया। इस सबके फलस्वरूप भारतीय राज-नीति के मंच पर गांधी के असहयोग आंदोलन का जन्म

हुआ। मौलाना आज़ाद की मुलाकात तो गांधी जी से तभी हो चुकी थी, जब वह जेल से छूटे थे। दोनों ने एक दूसरे को पसंद भी किया था, अतः असहयोग आंदोलन में मौलाना कमर कसकर जुट गए। इस मौके पर मौलाना आज़ाद ने मुस्लिम जनता में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भावनाएं जगाने की जी तोड़ कोशिश कीं। इसमें उन्हें सफलता भी मिली। भारत के मुसलमानों को संबोधित करते हुए एक स्थान पर उन्होंने कहा कि ऐ मुसलमानों, जिस पाक पैगम्बर की शिक्षाओं पर इस्लाम टिका है, उसने एक जगह कहा है कि "वह धन्य है जो जालिम हुकूमत के खिलाफ सच्चाई का डंका बजाकर मौत को गले लगाता है और ऐसे नेक काम के लिए अपने को कुर्बान कर देता हैं।"

सितम्बर, १९२३ में जब मौलाना आज़ाद को इंडियन नेशनल कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया, उस समय उनकी उम्र सिर्फ पेंतिस साल थी। उस अवसर पर अध्यक्ष पद से उन्होंने जो भाषण दिया, उसमें भी सबसे ज़्यादा ज़ोर हिन्दु-मुस्लिम एकता पर ही था। उन्होंने कहा, "आज अगर आसमान की बदलियों से फरिश्ता उतर आए और दिल्ली की कुतुब मीनार पर खड़े होकर एलान कर दे कि अगर हिन्दुस्तान के हिन्दु और मुसलमान अलग-अलग हो जाएं तो २४ घंटे के अंदर आज़ादी

मिल सकती है, तो ऐसी आज़ादी को मैं ठुकरा दूंगा। आज़ादी न मिलने से तो सिर्फ हमारे मुल्क हिन्दुस्तान का ही नुकसान होगा, लेकिन अगर हमारी एकता खत्म हो गई तो यह समूची इंसानियत का नुकसान है।"

लेकिन उसी दौरान कुछ समय के लिए अंग्रेज़ों की एक चाल सभल हो गई। उन्होंने असामाजिक व सांप्रदायिक तत्वों को उकसाकर सारे देश में दंगे शुरू करवा दिए। हिन्दु और मुसलमान दोनों ही एक-दूसरे के खून के प्यासे हो उठे। यह देखकर महात्मा गांधी विक्षुब्ध हो उठे। उन्होंने २१ दिन की भूख हड़ताल शुरू कर दी। इसका तत्काल असर यह पड़ा कि २६ सितम्बर सन् १९२४ के दिन एक एकता सम्मेलन का आयोजन किया गया और उसे हर प्रकार से सफल बनाया गया। उक्त एकता सम्मेलन की सफलता का भी एकमात्र श्रेय मौलाना आज़ाद को ही जाता है। इस एकता सम्मेलन में हिन्दु और मुस्लिम दोनों ही धर्मों के नेताओं ने महात्मा गांधी को वचन दिया कि वे दोनों सम्प्रदायों के बीच सद्भाव और एकता पैदा करने की पूरी कोशिश करेंगे। यही नहीं, उस एकता सम्मेलन में हिन्दु और मुसलमान इस तरह आपस में गले मिले, जिस तरह का दृश्य होली-मिलन के अवसर पर आम तौर से दिखाई देता है। उक्त एकता सम्मेलन में मौलाना आज़ाद की जो भूमिका रही, उसके संबध

में तत्कालीन समाचार पत्रों की राय थी :

"एकता सम्मेलन से बढ़ी हुई इज़्ज़त के साथ यदि कोई नेता देश के सामने आ रहे हैं तो वह मौलाना अबुल कलाम आज़ाद हैं। मौलाना ने कई ऐसे निकट समयों में नैया की पतवार को संभाला, जिनमें से निकलना असंभव-सा दिखाई देता था।"

एकता सम्मेलन के बाद गांधी जी की अध्यक्षता में दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन भी आयोजित किया गया। इस अवसर पर साम्प्रदायिक एकता के उद्देश्य से चालीस व्यक्तियों की एक उपसमिति गठित की गई, जिसमें मौलाना आज़ाद का नाम सबसे ऊपर था।

किन्तु इस सबके बावजूद यह एक विडम्बना ही है कि जिस चीज़ के लिए मौलाना आज़ाद तथा उन जैसे अनेकानेक लोगों ने अपनी पूरी ज़िंदगी गारत कर दी, उसकी हिफाज़त हम आखिर तक नहीं कर पाए। अपनी ज़िन्दगी में ही मौलाना आज़ाद और गांधी जी जैसे लोगों को वह काला दिन देखना पड़ा तब देश की किस्मत का फैसला बटवारे की कीमत देकर कराना पड़ा और उसके साथ ही पंजाब से लेकर बंगाल तक हिन्दु-मुसलमानों के खून की नदियां उफन पड़ीं।

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि हमारे देश में हिन्दू-मुस्लिम एकता के जितने भी समर्थक अब तक हुए हैं, उनमें मौलाना आज़ाद का नाम सबसे ऊपर है।

5

राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका

राष्ट्रीय आन्दोलनों के साथ मौलाना आज़ाद का जुड़ाव, उनके होश संभालने के बाद, लगभग हर समय बना रहा। चौदह साल की उम्र में जब उन्होंने मौ० हाली की लिखी हुई सर सैयद अहमद खां की जीवनी की कड़ी आलोचना की थी, एक प्रकार से, उस समय भी मुख्ह रूप से वह राष्ट्रीय भावना से प्रेरित थे। 'अल हिलाल' के प्रकाशन के पीछे तो विशुद्ध राष्ट्रीय भावना ही काम कर रही थी। और जहां तक राष्ट्रीय आन्दोलन में मौलाना की सक्रिय भूमिका की बात है, तो 'अल हिलाल' और 'अल बलाग' के सम्पादन के दौरान ही वह उसमें उतर आए थे। अपनी उसी भूमिका के फलस्वरूप उन्हें कलकत्ता छोड़कर रांची बसना पड़ा था और उसके बाद तीन साल की जेल काटनी पड़ी थी।

रांची जेल से जिस समय मौलाना आज़ाद छूटे, महात्मा गांधी असहयोग आन्दोलन का नारा दे चुके थे। देखते ही देखते पूरे देश में, एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक, असहयोग की आग भड़क उठी। यह देखकर

मौलाना भी पूरी तरह राजनीति में सक्रिय हो उठे। उन्होंने जो मोर्चा संभाला वह मुसलमानों में जागृति पैदा करने का था। मौलाना जी-जान से उस काम में जुट गए। लेकिन उनकी यह व्यस्तता अंग्रेज़ सरकार को बर्दाश्त न हुई, और असहयोग के मुद्दे पर उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया।

दूसरी बार मौलाना आज़ाद जब जेल से छूटे तो कांग्रेस पार्टी के अंदर मतभेदों की खाई चौड़ी होती जा रही थी। बात यह थी कि सरकार ने असेंबली के चुनावों की घोषणा कर दी थी। इसलिए कांग्रेस के अन्दर दो विचार धाराएं उठ खड़ी हुईं। एक तरह के लोग कहते थे कि चुनावों में हिस्सा लो और दूसरी तरह के लोगों का कहना था कि नहीं, हमें चुनावों का बहिष्कार करना चाहिए। कांग्रेस के अंदर के इस मत-भेद ने मौलाना आज़ाद का ध्यान बड़ी तेजी से खींचा और वह उसे खत्म करने की जी-जान से कोशिश करने लगे। इस काम में उन्हें सफलता भी मिली। यही नहीं, कांग्रेसी नेताओं में उनका नाम इतना महत्वपूर्ण हो उठा कि सितंबर 1923 में बुलाए गए कांग्रेस के एक विशेष अधिवेशन में सर्वसम्मति से उन्हें कांग्रेस अध्यक्ष का पद संभालना पड़ा। कांग्रेस अध्यक्ष रहने के दौरान मौलाना ने हिन्दू-मुस्लिम एकता की दिशा में काफी अहम्

भूमिका निभाई।

सन् 1927 में साइमन कमीशन भारत आने की घोषणा हुई। इस घोषणा के साथ ही इसके विरोध का स्वर भी सारे देश में तेज़ हो उठा। क्या नरम दल और क्या गरम दल, सब के सब उसका बहिष्कार करने के प्रश्न पर एकमत हो उठे। साइमन के बहिष्कार का फैसला जिस बैठक में हुआ, वह नवम्बर 1927 में कलकत्ते में मौलाना आज़ाद की अध्यक्षता में बुलाई गई थी। इसी सिलसिले में मौलाना ने पूरे पंजाब, दिल्ली तथा अन्य कई जगहों का दौरा किया और पूरे देश की राजनीतिक स्थिति का जायज़ा लिया।

इसी काल में कांग्रेस ने एक और महत्वपूर्णनिर्णय लिया। वह निर्णय था—पूरे देश में नमक सत्याग्रह चलाने का। इसे भी सफल बनाने की ज़िम्मेवारी मौलाना आज़ाद ने पूरी तरह निभाई। न केवल इस आंदोलन में मुसलमानों ने डटकर भाग लिया, बल्कि अपने को गिरफ्तार भी कराया। इसी सत्याग्रह में मौलाना को एक बार फिर छहमहीने जेल में बिताने पड़े।

नमक सत्याग्रह पूरे एक साल तक चला। इसी के फलस्वरूप महात्मा गांधी की लार्ड इरविन से बातचीत हुई और सत्याग्रह को रोक देने का फैसला लिया गया। तत्पश्चात् भारत का प्रतिनिधित्व करने के उद्देश्य से

महात्मा गांधी ने लंदन में होनेवाली गोलमेज़ कान्फ्रेंस में भाग लिया। किन्तु वह कान्फ्रेंस सफल न हो सकी और भारत लौटते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के साथ ही नेताओं की गिरफ्तारी का सिलसिला एक बार फिर तेज़ हो उठा। इस बार भी मौलाना आज़ाद बच नहीं सके।

सन् 1935 में एक बार फिर चुनावों की घोषणा हुई। इन चुनावों में कांग्रेस ने पूरा हिस्सा लिया और भारी बहुमत से जीती। इस जीत के फलस्वरूप कांग्रेस मंत्रिमंडल अस्तित्व में आया और कांग्रेस की एक संसदीय समिति भी बनाई गई। उसके एक सदस्य मौलाना आज़ाद भी चुने गए और उन्हें बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, सिंध तथा सीमावर्ती इलाके के संसदीय मामलों की ज़िम्मेदारी सौंपी गई।

कांग्रेस मंत्रिमण्डलों को अस्तित्व में आए अभी तीन-चार साल ही हुए थे कि विश्व राजनीति के मंच पर दूसरे विश्वयुद्ध की शुरुआत हो गई। उधर अंग्रेज़ सरकार ने भारतीयों की भावना की तनिक भी परवाह किए बिना भारतीय जनता को भी युद्ध की आग में लपेट लिया। यह बात कांग्रेसी नेताओं को पंसद न आई और विरोधस्वरूप सभी प्रांतों के कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने त्यागपत्र देकर ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग के

वायदे को खत्म कर दिया।

इस मौके का लाभ उठाकर ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग नामक साम्प्रदायिक दल की पीठ ठोक दी। परिणाम यह हुआ कि साम्प्रदायिक भावनाएं फिर से भड़क उठीं।

देश के राजनीतिक वातावरण की इन बिगड़ी हुई परिस्थितियों में राष्ट्रीय नेताओं का दायित्व काफी बढ़ गया। सामाजिक और राजनैतिक, दोनों ही मोर्चों पर वे जी-जान से डट गये। मौलाना आज़ाद ने उससे पहले साल कांग्रेस का अध्यक्ष पद संभालने से इन्कार कर दिया था, लेकिन इस बार वह ऐसा नहीं कर सके और उन्हें अध्यक्ष पद स्वीकार करना पड़ा। सन् 1940 में हुए कांग्रेस के तिरपनवें अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा, "हिन्दुस्तान की जनता पूर्ण स्वतंत्रता से कम कोई चीज़ स्वीकार नहीं करेगी, भावी हिन्दुस्तान के संविधान का आधार होना चाहिए—स्वतंत्रता, लोकतंत्र और राष्ट्रीय एकता।" नतीजा यह हुआ कि जैसे ही अधिवेशन समाप्त हुआ, मौलाना आज़ाद सहित कई अन्य कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। लेकिन जेल में रहते हुए भी मौलाना आज़ाद अपना कर्तव्य न भूले और कांग्रेसजनों को निर्देश देते रहे।

सन् 1941 में मौलाना आज़ाद को जेल से छोड़ा गया। जैसे ही वह बाहर आये, कांग्रेस कार्यसमिति की अविलम्ब मीटिंग बुलायी और इस मसले पर विचार-विमर्श किया कि दूसरे विश्वयुद्ध में कांग्रेस की भूमिका क्या हो। फैसला किया गया कि भारत की सम्पूर्ण स्वाधीनता के लिए अंग्रेज़ों से बातचीत की जानी चाहिए। इसी फैसले के फलस्वरूप सन् 1942 में सर क्रिप्स का मिशन भारत आया। भारत में सर क्रिप्स कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रमुख नेताओं से मिले। पहले महात्मा गांधी से उनकी बातचीत हुई, फिर मौलाना आज़ाद से। लेकिन दोनों में से किसी को भी सर स्टेफर्ड क्रिप्स अपनी बात से सहमत नहीं कर सके और क्रिप्स मिशन के हाथ असफलता ही लगी।

इन सारी परिस्थितियों से पूरे देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक चर्चाएं गरम हो उठीं। शांतिपूर्ण तरीके से आज़ादी मिलने की जो भी रही-सही संभावनाएं थीं, समाप्त हो गईं। अब एक ही रास्ता था, किसी नये आंदोलन का सूत्रपात किया जाए। और इस तरह 'भारत छोड़ो' आंदोलन का विचार भारत के राष्ट्रीय मंच पर अवतरित हुआ। सबसे पहले इस आंदोलन के बारे में बातचीत 15 जुलाई, 1942 को वर्धा में आयोजित कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में हुई। आंदोलन से

संबंधित प्रस्ताव महात्मा गांधी ने प्रस्तुत किया, जो सर्वसम्मति से पास हो गया। प्रस्ताव पास होने के बावजूद उसकी सार्वजनिक घोषणा कुछ समय तक के लिए रोके रखी गई। मौलाना आज़ाद कांग्रेस के अध्यक्ष थे, अतः उन्होंने घूम-घूमकर कांग्रेस के सभी छोटे-बड़े नेताओं से सम्पर्क स्थापित किया और बताया कि आंदोलन छिड़ जाने के बाद निश्चय ही नेताओं की गिरफ्तारियां शुरू हो जाएंगी। ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस के प्रत्येक कार्यकर्ता को पूरे विवेक से काम लेना होगा और यह मानकर कि वह स्वयं नेता है, अपने अगले कदम का फैसला करना होगा।

इस प्रकार, सभी प्रारम्भिक तैयारियों के बाद 8 अगस्त, 1942 को 'भारत छोड़ो' आंदोलन की घोषणा सार्वजनिक रूप से कर दी गई। और जैसी आशंका थी, वही हुआ। घोषणा के साथ ही सरकारी कार्रवाइयां शुरू हो गईं। एक सिरे से दूसरे सिरे तक टेलीफोन घनघना उठे और ढूंढ-ढूंढकर कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार किया जाने लगा। मौलाना आज़ाद उस रात बम्बई में भूलाभाई देसाई के मकान पर ठहरे थे। अभी पहली नींद भी पूरी न हो पाई थी कि उनकी गिरफ्तारी का वारंट लेकर बम्बई का डिप्टी कमिश्नर

गिरफ्तार कर लिया गया। मौलाना आज़ाद के अलावा महात्मा गांधी तथा अन्य महत्त्वपूर्ण नेताओं को भी गिरफ्तार किया गया। महात्मा गांधी को पूना के आगा खां महल में और मौलाना आज़ाद को अहमद नगर के किले में नजरबंद कैदी के रूप में रखा गया।

भारत के राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी की ख़बर ने आग में घी को काम किया। लोगों की दबी भावनाओं ने उभार मारा और 'अंग्रेज़ो भारत छोड़ो' का गगनभेदी नारा सारे देश में गूंज उठा। विद्रोह और मर-मिटने की भावना ने देश की साधारण जनता तक को प्रभावित किया। फलतः पुलिस चौकियों पर हमले किये गये, डाकखानों को फूंक दिया गया और रेलवे की पटरियां उखाड़ डाली गईं। पूरे देश की संचार व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गई, सरकारी कामकाज व उद्योग-धंधे ठप्प हो गए। बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र की जनता ने 'भारत छोड़ो' आंदोलन में बड़ी ही जांबाज़ी के साथ खुलकर हिस्सा लिया और बिना किसी प्रकार की परवाह किये हंसते-हंसते जेल भी गये। लोकनायक जयप्रकाश नारायण का क्रांतिकारी व्यक्तित्व पहले-पहल इसी आंदोलन में उभरकर सामने आया और हज़ारीबाग जेल की दीवार फांदकर समूचे ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती देते हुए वे आज़ादी का झण्डा ऊंचा उठाये रहे।

नौसेना विद्रोह की प्रसिद्ध घटना भी इसी दौरान घटी और बहादुर रणबांकुरों ने अपना जीवन हंसते हंसते स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अर्पित कर दिया।

'भारत छोड़ो' आंदोलन के फलस्वरूप जब मौलाना आज़ाद जेल के सीखचों में कैद थे, तभी उनकी पत्नी और बहन का देहांत हो गया। यदि वह चाहते तो स्वजनों की मृत्यु के आधार पर पैरोल पर जेल से बाहर आ सकते थे, लेकिन अत्याचारी ब्रिटिश सरकार से किसी तरह की अपील की बात उन्होंने स्वप्न तक में नहीं सोची। जेल के सीखचों के पीछे से ही उन्होंने अपनी दिवंगता पत्नी और बहन के प्रति अश्रुपूर्ण अंजलि भेंट की और उनकी पाक याद को अपने दिल में बहुत गहरे संजो लिया। ऐसे थे वह बात के धनी।

'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान लार्ड वेवल भारत के वायसराय थे। 1945 के मई मास में वह इंग्लैण्ड गये। वहां से लौटकर उन्होंने घोषणा की कि भारतीयों को संपूर्ण अधिकार देने के बारे में शिमला में 25 जून को एक गोलमेज कान्फ्रेंस होगी और उसके बाद जेल में बन्द सभी राजनैतिक कैदियों को छोड़ दिया जाएगा। लार्ड वेवल की इसी घोषणा के फलस्वरूप कान्फ्रेंस में भाग लेने वाले महात्मा गांधी, मौलाना आज़ाद, पं० नेहरू आदि प्रमुख नेताओं को धीरे-धीरे छोड़ दिया गया।

25 जून, 1945 को शिमला में गोलमेज कान्फ्रेंस की शुरुआत हुई। यद्यपि न तो मौलाना आज़ाद का स्वास्थ्य ही ठीक था और न कान्फ्रेंस में शामिल होने का आन्तरिक उत्साह ही था लेकिन तब भी वह उसमें शामिल हुए। वहां जो कुछ उन्होंने देखा और जो उनकी नज़रों के सामने आया वह आशा के विपरीत नहीं था। वही क्रिप्स मिशन के समय जैसी चालें चलीं जा रही थीं और मुस्लिम साम्प्रदायिक तत्वों की पीठ ठोंकी जा रही थी। और बस वहीं से मौलाना के मन में दबी आशंका धीरे-धीरे मज़बूत होती गई। विभाजन का खतरा देश के आकाश पर और स्पष्ट होकर मंडराने लगा। बल्कि यदि यह कहा जाय कि शिमला कान्फ्रेंस भंग ही मुस्लिम लीग के कारण हुई, तो कोई अत्युक्ति न होगी।

कुछ ही समय बाद अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के मंच पर कुछेक घटनाएं बड़ी तेज़ी के साथ घटनी शुरू हुईं। इंग्लैंड के आम चुनावों में लेबर पार्टी की शानदार जीत हुई और उसके फलस्वरूप इंग्लैंड के नेतृत्व में बदलाव आया। नेतृत्व बदलने के साथ-साथ इंग्लैंड का भारत के प्रति रवैया भी बदला। इसके फलस्वरूप आम चुनाव की घोषणा हुई। मौलाना आज़ाद की विशेष पहल पर कांग्रेस ने भी चुनाव में भाग लेने का फैसला किया। चुनाव सम्पन्न हुए और सिर्फ दो-तीन प्रदेशों को छोड़कर सारे

देश में कांग्रेसी उम्मीदवारों की शानदार जीत हुई और बहुमत मिला।

आम चुनावों में कांग्रेस की भारी बहुमत से जीत होने के फलस्वरूप प्रान्तीय स्तर पर नयी सरकारें गठित करने का प्रश्न भी आया। यद्यपि अभी तक मुस्लिम लीग की भूमिका बड़ी असंतोषप्रद रही थी, और आम जनता के मन में लीग के प्रति अच्छे विचार नहीं थे, लेकिन मौलाना आज़ाद ने तब भी अपनी उदारता का परिचय दिया। इस मुद्दे पर बहुमत उनके विरुद्ध था। तब भी कांग्रेस के प्रमुख नेताओं को उन्होंने इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि कांग्रेसी मंत्रिमण्डल में मुस्लिम लीग को भी शामिल किया जाये। अतः जो नयी कांग्रेसी सरकारें बनीं उनमें लीग की शिरकत भी रही और मौलाना आज़ाद को शिक्षामंत्री का पद सौंपा गया।

6

शिक्षा मंत्री का दायित्व

कांग्रेसी मंत्रिमण्डल का गठन हुए अभी कुछ ही समय बिता था कि 17 फरवरी, 1946 को अचानक एक नयी सूचना देशवासियों को ब्रिटिश सरकार ने दी। सूचना यह थी कि इंग्लैंड की पार्लियामेंट ने फैसला किया है कि अब हिन्दुस्तान को आज़ाद कर दिया जाये। अतः इस मुद्दे पर विस्तारपूर्वक बातचीत करने के लिए आगामी 23 मार्च को एक मिशन हिंदुस्तान पहुंचने वाला है, जो यहां के राजनीतिक नेताओं से बातचीत करेगा और अपनी रिपोर्ट इंग्लैंड की पार्लियामेंट में पेश करेगा। उसी के आधार पर अगला फ़ैसला किया जाएगा।

इस घोषणा से देश के राजनैतिक क्षेत्रों में गति-विधियां तेज़ हो उठीं। विभिन्न राजनीतिक दलों से सम्बद्ध राष्ट्रीय नेता और कार्यकर्ता तरह-तरह की अटकलें लगाने और उम्मीदें बांधने लगे। लेकिन मौलाना आज़ाद के मन में अभी भी वही आशंका समायी हुई थी, जो शिमला कान्फ्रेंस के समय उन्हें परेशान किए हुए थी। मुस्लिम लीग को जिस प्रकार प्रोत्साहन मिल

रहा था और लीग के लोग जिस प्रकार ब्रिटिश शासकों के इशारे पर नाच रहे थे, उससे करीब-करीब यह स्पष्ट हो चुका था कि देश की अखंडता को अब अधिक दिनों तक बचाये रख पाना मुश्किल है।

और वही हुआ, जिसकी आशंका मौलाना आज़ाद जैसे कुछेक गिने-चुने दूरदर्शी नेता कर रहे थे। मंत्रि-मंडलीय मिशन आया और उसने अपने अध्ययन के बाद यह फैसला दिया कि बिना विभाजन के भारत को आज़ाद करना सम्भव नहीं। विवश होकर कांग्रेसी नेताओं को भी यह कटु सत्य स्वीकार करना पड़ा और बंटवारे संबधी चर्चाएं सारे देश में तेज़ी के साथ चल पड़ीं। अभी शान्तिपूर्ण तरीके से इस मुद्दे पर विचार-विमर्श चल ही रहा था कि मुस्लिम लीग के लोग हिन्दू-मुसलमानों के बीच दबी साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काने लगे। नतीज़ा यह हुआ कि देश के एक कोने से दूसरे कोने तक खून की नदियां बह चलीं और मांस के पहाड़ लग गये। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे हो उठे। न जाने कितने लोग निराश्रित हो गये, कितनी स्त्रियां विधवा हो गईं और कितने बच्चे अनाथ हो गये। देश का विभाजन तो होना ही था, हिन्दुस्तान पाकिस्तान तो बनना ही था, लेकिन विभाजन के इस रूप की कल्पना किसी ने भी न की थी। देश की

जिस आज़ादी के लिए हिन्दू और मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर पिछले लगभग सौ वर्षों से जान की बाज़ी लगाते आ रहे थे, वही आज़ादी हिन्दू और मुसलमान को एक दूसरे का जानी दुश्मन बनाकर आएगी, यह कल्पना किसी ने सपने में भी न की थी।

ख़ैर, हुआ यही। हिन्दू और मुसलमानों की लाशों पर चलकर आज़ादी आई। 15 अगस्त, 1947 को भारत से अंग्रेज़ी राज का अंत हो गया और हम स्वतंत्र भारत के नागरिक कहलाए। देश का एक अभिन्न अंग अब पाकिस्तान नाम का एक पड़ोसी देश बन चुका था।

स्वतंत्र भारत के प्रधान मंत्रित्व का भार पं० जवाहरलाल नेहरू ने संभाला और उन्होंने जो मंत्रिमण्डल गठित किया उसमें मौलाना आज़ाद को शिक्षा मंत्री का पद दिया गया। मौलाना आज़ाद की मानसिक स्थिति उस समय ठीक नहीं चल रही थी। भीषण नरसंहार का जो रूप अभी-अभी उन्होंने देखा था, उससे उन्हें बेहद तकलीफ पहुंची थी। इतनी वेदना संभवतः उन्होंने कैदी-जीवन बिताते समय अपनी पत्नी और बहन की मृत्यु के समाचार सुनकर भी नहीं अनुभव की होगी। इसीलिए उनका उत्साह ठंडा पड़ चुका था। लेकिन तभी कर्तव्य-भावना ने उन्हें सचेत किया और पूरे उत्साह के साथ शिक्षा मंत्रालय संभाल लिया। शिक्षा मंत्री के रूप में

मौलाना आज़ाद ने शिक्षा तथा कला-संगीत-साहित्य के क्षेत्र में कई एक महत्त्वपूर्ण कार्य किये।

पहले ऐसा कोई कार्यक्रम नहीं था, जिसके अन्तर्गत प्रौढ़ जनों को शिक्षित किया जा सकता। जो लोग अज्ञान और पिछड़े संस्कारों के कारण बचपन में शिक्षा से वंचित रह गये थे, उन्हें शिक्षित बनाना समाज के विकास की दृष्टि से बहुत ज़रूरी था। मौलाना आज़ाद ने इस जरूरत को समझा और प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम अपनी विशेष देख-रेख में शुरू कराया। एक ओर जहां नवसाक्षरता को उन्होंने प्राथमिकता दी, वहीं दूसरी ओर उच्च शिक्षा और विशेषज्ञता के क्षेत्र में भी उन्होंने पर्याप्त रुचि ली और प्राचीन शिक्षा पद्धति पर बल दिया। तब तक हिन्दी में विज्ञान संबंधी कार्यों व शोधों का पूरी तरह अभाव था। इसका मुख्य कारण यह था कि विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली तब तक नहीं बनायी गई थी। मौलाना आज़ाद ने जैसे ही शिक्षा मंत्रालय संभाला, इस कार्य को सर्वाधिक प्रमुखता दी। आज हमारे पास न केवल वैज्ञानिक, बल्कि अन्य प्रमुख विषयों की पारिभाषिक शब्दावलियां भी हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का गठन भी मौलाना आज़ाद ने ही करवाया। यह आयोग देश भर के सभी विश्व-विद्यालयों को आर्थिक सहयोग प्रदान करता है। विज्ञान

के व्यावहारिक अध्ययन व तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भी मौलाना आज़ाद की सेवाएं अविस्मरणीय हैं। 'आल इण्डिया कौंसिल फार टेक्नीकल एजूकेशन' नामक संस्था का समारम्भ मौलाना आज़ाद के शिक्षामंत्रित्व काल में ही हुआ।

एक ओर जहां प्रौढ़ शिक्षा, महिला शिक्षा, वैज्ञानिक तकनीकी शिक्षा तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मौलाना आज़ाद ने इतनी रुचि दिखाई वहीं दूसरी ओर कला-संगीत और साहित्य को राष्ट्रीय स्तर का महत्व दिलाने में भी वह आगे रहे। यह उनके लिए स्वाभाविक ही था, क्योंकि मूल रूप से तो उनका रिश्ता कलम से ही रहा था। इसलिए साहित्य अकादमी, संगीत-नाटक अकादमी और ललित कला अकादमी उन्होंने खुद अपनी रुचि से गठित करायीं। साहित्य अकादमी एक सरकारी संस्था है और देश की सभी प्रमुख भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य को बढ़ावा देने के उद्देश्य से उन भाषाओं के श्रेष्ठ रचनाकारों को प्रतिवर्ष पुरस्कार प्रदान करती है। इस संस्था द्वारा सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में श्रेष्ठ साहित्य का प्रकाशन भी किया जाता है। पहले-पहल जब साहित्य अकादमी का गठन हुआ तो, उसका अपना कोई भवन नहीं था। ऐसी स्थिति में मौलाना आज़ाद ने स्वयं अपने घर का एक हिस्सा अकादमी के कार्यालय हेतु दे दिया।

वहीं से साहित्य अकादमी के कार्य की शुरुआत हुई। इस तरह के निष्ठावान व्यक्ति भला अब कहीं मिलेंगे ? साहित्य अकादमी की ही भांति संगीत नाटक अकादमी और ललितकला अकादमी क्रमशः संगीत, नाटक और ललित कलाओं को राष्ट्रव्यापी स्तर पर संरक्षण प्रदान करती है। इन अकादमियों द्वारा भी प्रतिवर्ष श्रेष्ठता के आधार पर पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मौलाना आजाद शिक्षा मंत्री के रूप में अपने दस वर्षों के कार्यकाल के दौरान दिन-रात अद्भुत रूप में सक्रिय रहे। साथ ही लोकसभा के प्रथम व द्वितीय आम चुनावों में कांग्रेस प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़ा और शानदार जीत हासिल की।

अन्त में, चुपके से वह समय भी आ पहुंचा जब आदमी पूरी तरह से अवश हो जाता है। उस दिन सन् 1958 साल के फरवरी मास की 22 वीं तारीख थी। मौलाना आज़ाद अपनी ज़िन्दगी के 70 साल पूरे करने जा रहे थे कि अचानक ऊपर से बुलावा आया और वह 'ना' न कर सके। मन ही मन अपने प्यारे मुल्क को आदाब किया, अज़ीज़ दोस्तों को याद किया, देश की जनता का शुक्रिया अदा किया और मौत के पैगम्बर का हाथ पकड़कर पीछे-पीछे चल पड़े।

वह जा रहे थे। अपने अज़ीज़ मुल्क और मुल्क के

लोगों को छोड़कर जा रहे थे, दोस्तों को छोड़कर जा रहे थे और एक ऐसी दुनिया में जा रहे थे, जहां से कोई वापस नहीं लौटता। लेकिन उनके मन में किसी तरह का मलाल नहीं था। जो भी काम मुल्क के लोगों ने उन्हें सौंपा था, उसे उन्होंने दिलो-जां से पूरा कर दिखाया था। और फिर····अन्त में जाना तो था ही।

वह जब तक जिये, शान से जिये और जवां मर्दों की तरह जिये और जब जाने का वक्त आया तो बिना किसी मलाल के चल भी दिये।

मुद्रक : सुदर्शन आर्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-32

5832